The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 3 | March 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

जातिगत मंदिर और सामाजिक संरचना: सामुदायिक एकता एवं सामाजिक विभाजन का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय

स्वतंत्र शोधकर्ता, समाजशास्त्र, ईमेल: shailendra0440@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.19543308

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 29-03-2026

Published: 10-04-2026

Keywords:

जाति व्यवस्था, जातिगत मंदिर, सामुदायिक एकता, सामाजिक विभाजन, धर्म और समाज

ABSTRACT

समकालीन भारतीय समाज में जाति और धर्म के अंतर्संबंध सामाजिक संरचना के निर्माण के साथ-साथ उसके पुनरुत्पादन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस संदर्भ में जातिगत मंदिर एक विशेष सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था के रूप में उभरते हैं। यह संस्थाएं धार्मिक आस्था, सामुदायिक संगठन समेत सामाजिक संबंधों को भी अत्यंत प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में एमिल दुर्खीम, लुई ड्यूमों तथा एम. एन. श्रीनिवास के सैद्धांतिक दृष्टिकोणों का उपयोग करते हुए जातिगत मंदिरों की उत्पत्ति, संरचना और उसके प्रभावों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। उक्त अध्ययन गुणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित है तथा आंकड़ों के संकलन हेतु द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। अध्ययन के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि जातिगत मंदिर सामूहिक पहचान, सामाजिक पूंजी एवं समुदाय-आधारित संगठन को सुदृढ़ करने के साथ ही वे जातिगत पदानुक्रम, सामाजिक दूरी एवं बहिष्कार की प्रक्रियाओं को भी पुनर्स्थापित करते हैं। इस प्रकार, जातिगत मंदिर भारतीय समाज में एक द्वंद्वात्मक सामाजिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ एकता और विभाजन दोनों समानांतर रूप से विद्यमान हैं।

प्रस्तावना

भारतीय समाज की संरचना को समझने के लिए जाति और धर्म के अंतर्संबंध का विश्लेषण अत्यंत महत्वपूर्ण है। जाति व्यवस्था न केवल सामाजिक स्तरीकरण का आधार रही है, बल्कि यह धार्मिक आस्थाओं, अनुष्ठानों और संस्थागत संरचनाओं के माध्यम से निरंतर पुनरुत्पादित होती रही है। इस संदर्भ में मंदिर, जिन्हें सामान्यतः धार्मिक आस्था के केंद्र के रूप में देखा जाता है, वास्तव में सामाजिक संबंधों, शक्ति-संतुलन और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के भी प्रमुख स्थल होते हैं। अतः मंदिरों का अध्ययन केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से भी अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

भारतीय समाज में अनेक स्थानों पर ऐसे मंदिर पाए जाते हैं जो विशिष्ट जातियों या समुदायों से संबद्ध होते हैं। ये "जातिगत मंदिर" किसी विशेष जाति के कुलदेवता, स्थानीय देवी-देवताओं या ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परंपराओं से जुड़े होते हैं और प्रायः उसी समुदाय द्वारा संचालित होते हैं। इस प्रकार, ये मंदिर सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक निरंतरता एवं सामुदायिक संगठन के महत्वपूर्ण केंद्र बन जाते हैं। तथापि, विभिन्न अध्ययनों से यह भी स्पष्ट होता है कि धार्मिक संस्थाएँ, विशेषकर मंदिर, सामाजिक असमानताओं और प्रभुत्व संबंधों को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कई शोधों में यह पाया गया है कि मंदिरों तक पहुँच, पूजा-अधिकार तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भागीदारी पर जातिगत नियंत्रण विद्यमान रहा है, जिससे सामाजिक बहिष्कार और सांस्कृतिक अधीनता की प्रक्रियाएँ सुदृढ़ होती हैं।

दलितों के मंदिर प्रवेश आंदोलनों के अध्ययन यह दर्शाते हैं कि धार्मिक संस्थानों तक समान पहुँच के लिए उन्हें लंबे समय तक संघर्ष करना पड़ा है। ये आंदोलन इस बात का प्रमाण हैं कि मंदिर केवल आध्यात्मिक स्थल नहीं, बल्कि सामाजिक शक्ति और वर्चस्व के भी केंद्र रहे हैं। इसी प्रकार, समकालीन समाजशास्त्रीय अध्ययनों में यह भी इंगित किया गया है कि धार्मिक संस्थाएँ जातिगत प्रभुत्व और सामाजिक पदानुक्रम को वैधता प्रदान करने का कार्य करती हैं। इस प्रकार, जातिगत मंदिरों को केवल धार्मिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना के सक्रिय घटक के रूप में समझना आवश्यक है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जातिगत मंदिरों की भूमिका द्वंद्वात्मक प्रकृति की प्रतीत होती है। एक ओर ये मंदिर सामूहिक पहचान, सामाजिक पूंजी और सामुदायिक एकता को सुदृढ़ करते हैं, वहीं दूसरी ओर ये जातिगत दूरी, सामाजिक विभाजन और बहिष्कार की संरचनाओं को भी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार, ये संस्थाएँ एक ऐसे सामाजिक यथार्थ को प्रतिबिंबित करती हैं जहाँ एकता और विभाजन दोनों एक साथ विद्यमान रहते हैं।

साहित्य समीक्षा

Nicholas B. Dirks (2001) निकोलस डिर्क्स ने अपनी कृति Castes of Mind में यह तर्क प्रस्तुत किया कि जाति व्यवस्था केवल पारंपरिक सामाजिक संरचना नहीं है, बल्कि औपनिवेशिक शासन के दौरान इसे एक संगठित और कठोर पहचान के रूप में पुनर्निर्मित किया गया। उनके अनुसार, औपनिवेशिक प्रशासन ने धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं, विशेषकर मंदिरों को जातिगत पहचान के स्थायी प्रतीकों में परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डिर्क्स का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि धार्मिक संस्थान सामाजिक वर्गीकरण और पहचान निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार रहे हैं। जातिगत मंदिरों के संदर्भ में यह दृष्टिकोण इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दर्शाता है कि कैसे मंदिर केवल धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि सामाजिक शक्ति और पहचान के संस्थागत केंद्र बन गए। इस प्रकार, जातिगत मंदिर ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप विकसित हुए हैं और वे आज भी सामाजिक संरचना को प्रभावित करते हैं।

Susan Bayly (1999) Caste, Society and Politics in India सुसान बेली ने भारतीय समाज में जाति, धर्म और राजनीति के अंतर्संबंध का ऐतिहासिक और नृविज्ञानात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, धार्मिक संस्थाएँ विशेषकर स्थानीय मंदिर जातिगत पहचान और सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बेली यह दर्शाती हैं कि विभिन्न जातियों के अपने-अपने धार्मिक स्थल और देवी-देवता होते हैं, जो उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता को बनाए

रखते हैं। यह अध्ययन इस बात को स्पष्ट करता है कि जातिगत मंदिर सामुदायिक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता के केंद्र होते हैं। साथ ही, यह भी दिखाता है कि ये मंदिर सामाजिक विभाजन और दूरी को भी बनाए रखते हैं, क्योंकि वे जातियों के बीच स्पष्ट सीमाएँ स्थापित करते हैं।

Rowena Robinson (2004) Christianity in India रोवेना रॉबिन्सन ने भारत में धर्म और सामाजिक संरचना के अंतर्संबंध का अध्ययन करते हुए यह दिखाया कि धार्मिक संस्थाएँ, चाहे वे किसी भी धर्म से संबंधित हों, सामाजिक असमानताओं को प्रभावित करती हैं। उनके अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि धार्मिक स्थल सामाजिक पहचान, बहिष्कार और समावेशन की प्रक्रियाओं में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। यद्यपि उनका अध्ययन मुख्यतः ईसाई समुदाय पर केंद्रित है, लेकिन उनके निष्कर्ष भारतीय संदर्भ में व्यापक रूप से लागू होते हैं। जातिगत मंदिरों के संदर्भ में यह दृष्टिकोण यह समझने में सहायक है कि धार्मिक संस्थाएँ किस प्रकार सामाजिक सीमाओं को निर्मित और पुनर्स्थापित करती हैं।

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

एमिल दुर्खीम - धर्म, सामूहिक प्रतिनिधित्व एवं सामाजिक एकता: एमिल दुर्खीम के अनुसार धर्म एक मूलभूत सामाजिक तथ्य है, जो समाज की सामूहिक चेतना का प्रतिबिंब होता है। एमिल दुर्खीम ने अपनी प्रसिद्ध कृति The Elementary Forms of Religious Life (1912) में यह प्रतिपादित किया कि धर्म "सामूहिक प्रतिनिधित्व" की एक संगठित प्रणाली है, जिसके माध्यम से समाज अपने मूल्यों, विश्वासों और मान्यताओं को अभिव्यक्त करता है। दुर्खीम के अनुसार धार्मिक अनुष्ठान, प्रतीक, मिथक और संस्थाएँ केवल आध्यात्मिक अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक एकता, अनुशासन और सामूहिक बंधन को सुदृढ़ करने के साधन हैं।

जातिगत मंदिरों के संदर्भ में एमिल दुर्खीम का सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। मंदिर एक विशिष्ट समुदाय विशेषकर जाति की सामूहिक पहचान, सांस्कृतिक निरंतरता और सामाजिक एकता का केंद्र बनते हैं। जब किसी जाति के सदस्य अपने जातिगत मंदिर में एकत्रित होकर पूजा-अर्चना, उत्सव और अनुष्ठानों में भाग लेते हैं, तो वे साझा आस्था और सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से "सामूहिक एकजुटता" का अनुभव करते हैं। इस प्रकार, मंदिर उस समुदाय के भीतर सामाजिक संबंधों को मजबूत करने और सामूहिक चेतना को पुनर्स्थापित करने का कार्य करते हैं।

हालाँकि, दुर्खीम का दृष्टिकोण मुख्यतः सामाजिक एकता पर केंद्रित है, परंतु जातिगत मंदिरों के संदर्भ में इसकी सीमाएँ भी स्पष्ट होती हैं। यहाँ उत्पन्न होने वाली एकता अक्सर केवल "समूह-विशेष" तक सीमित रहती है और व्यापक समाज में समावेशिता का विस्तार नहीं कर पाती। परिणामस्वरूप, जहाँ एक ओर मंदिर किसी जाति के भीतर एकता और संगठन को सुदृढ़ करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे अन्य जातियों के साथ सामाजिक दूरी और विभाजन को भी बनाए रखते हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दुर्खीम का सिद्धांत जातिगत मंदिरों को "आंतरिक सामाजिक एकता" के सशक्त माध्यम के रूप में समझने में सहायक है, किंतु यह उनके द्वारा उत्पन्न "अंतर-समूह विभाजन" की व्याख्या करने में आंशिक रूप से सीमित रह जाता है।

लुई ड्यूमों - शुद्धता-अशुद्धता एवं जातिगत पदानुक्रम: लुई ड्यूमों ने अपनी प्रसिद्ध कृति Homo Hierarchicus (1966) में भारतीय जाति व्यवस्था का विश्लेषण "शुद्धता और अशुद्धता" की अवधारणा के आधार पर किया। उनके अनुसार

भारतीय समाज मूलतः एक पदानुक्रमित व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न जातियों की सामाजिक स्थिति धार्मिक शुद्धता के स्तर से निर्धारित होती है। इस संरचना में ब्राह्मण जैसी उच्च जातियाँ "शुद्धता" के उच्चतम स्तर का प्रतिनिधित्व करती हैं, जबकि निम्न जातियों को अपेक्षाकृत "अशुद्ध" माना जाता है। ड्यूमों का यह सिद्धांत जातिगत मंदिरों की संरचना और कार्यप्रणाली को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

भारतीय समाज में मंदिर केवल धार्मिक स्थल नहीं होते, बल्कि वे सामाजिक पदानुक्रम के प्रत्यक्ष प्रतीक भी होते हैं। मंदिरों के नियंत्रण, पुजारी वर्ग की भूमिका, पूजा-अर्चना की विधियाँ तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भागीदारी इन सभी पर "शुद्धता-अशुद्धता" की अवधारणा का स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है। उच्च जातियों को मंदिरों में विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, जैसे कि पुजारी पद, गर्भगृह में प्रवेश या अनुष्ठानों का संचालन, जबकि निम्न जातियों की भागीदारी कई बार सीमित या प्रतिबंधित रहती है।

इस संदर्भ में जातिगत मंदिर उस पदानुक्रम को संस्थागत रूप प्रदान करते हैं, जिसे ड्यूमों ने अपने सिद्धांत में रेखांकित किया है। जब विभिन्न जातियाँ अपने-अपने अलग मंदिर स्थापित करती हैं, तो यह न केवल उनकी सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक पहचान को व्यक्त करता है, बल्कि उस संरचनात्मक असमानता को भी पुनः स्थापित करता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ड्यूमों का सिद्धांत जातिगत मंदिरों को केवल धार्मिक संस्था के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता, पदानुक्रम और शक्ति-संबंधों के संरचनात्मक प्रतीक के रूप में समझने में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

एम. एन. श्रीनिवास - जाति संरचना, सामाजिक संबंध एवं संस्कृतिकरण: एम. एन. श्रीनिवास ने भारतीय समाज में जाति व्यवस्था और सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए "संस्कृतिकरण" तथा "प्रभु जाति" जैसी महत्वपूर्ण अवधारणाओं का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार, भारतीय समाज स्थिर नहीं है, बल्कि निरंतर परिवर्तनशील है, जहाँ निम्न एवं मध्यवर्ती जातियाँ सामाजिक उन्नयन की आकांक्षा में उच्च जातियों की जीवनशैली, रीति-रिवाज, अनुष्ठान और धार्मिक व्यवहारों को अपनाती हैं। इस प्रक्रिया को उन्होंने संस्कृतिकरण कहा, जिसके माध्यम से जातियाँ अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयास करती हैं।

जातिगत मंदिरों के संदर्भ में यह सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। अनेक क्षेत्रों में यह देखा गया है कि पिछड़ी या निम्न जातियाँ अपने स्वतंत्र मंदिरों की स्थापना करती हैं, जहाँ वे उच्च जातियों के समान देवी-देवताओं की पूजा, ब्राह्मणवादी अनुष्ठानों का पालन तथा वैदिक परंपराओं को अपनाने का प्रयास करती हैं। यह केवल धार्मिक क्रिया नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने और अपनी सामुदायिक पहचान को सुदृढ़ करने की एक रणनीतिक प्रक्रिया है। इस प्रकार, मंदिर सामाजिक गतिशीलता का एक माध्यम बन जाते हैं।

इसके साथ ही, श्रीनिवास द्वारा प्रतिपादित "प्रभु जाति" की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि किसी क्षेत्र विशेष में आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक रूप से सशक्त जाति धार्मिक संस्थानों विशेषकर मंदिरों पर नियंत्रण स्थापित कर लेती है। यह नियंत्रण न केवल धार्मिक गतिविधियों को प्रभावित करता है, बल्कि सामाजिक संसाधनों के वितरण, स्थानीय सत्ता संरचना और अंतर-जातीय संबंधों को भी निर्धारित करता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रीनिवास का सिद्धांत जातिगत मंदिरों को

एक गतिशील सामाजिक संस्था के रूप में प्रस्तुत करता है, जो सामाजिक परिवर्तन, प्रतिस्पर्धा, प्रतिष्ठा प्राप्ति और पहचान निर्माण की जटिल प्रक्रियाओं से गहराई से जुड़ी होती है।

अध्ययन के उद्देश्य

- भारतीय समाज में जातिगत मंदिरों की उत्पत्ति एवं ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया को समझना।
- जातिगत मंदिरों की सामुदायिक एकता एवं सामाजिक संगठन में भूमिका का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना।
- जातिगत मंदिरों से उत्पन्न सामाजिक विभाजन, बहिष्कार एवं असमानता की प्रकृति का अध्ययन करना।
- जाति और धर्म के अंतर्संबंध का विश्लेषण करते हुए यह समझना कि धार्मिक संस्थाएँ किस प्रकार सामाजिक संरचना को प्रभावित करती हैं।

अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक प्रकृति का है, जिसका उद्देश्य भारतीय समाज में जातिगत मंदिरों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं संरचनात्मक आयामों का गहन विश्लेषण करना है। यह शोध पूर्णतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है, जिसमें विभिन्न प्रामाणिक स्रोतों से प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है। आँकड़ों के प्रमुख स्रोतों में समाजशास्त्रीय एवं नृविज्ञानात्मक पुस्तकें, शोध आलेख, जर्नल, तथा सरकारी रिपोर्ट शामिल हैं। इन स्रोतों के माध्यम से जातिगत मंदिरों की उत्पत्ति, संरचना, सामाजिक भूमिका एवं प्रभाव से संबंधित जानकारी संकलित की गई है। इस अध्ययन में मुख्यतः व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग किया गया है। व्याख्यात्मक विधि के अंतर्गत विभिन्न सिद्धांतों, अवधारणाओं एवं पूर्ववर्ती अध्ययनों की व्याख्या करते हुए जाति और धर्म के अंतर्संबंध को समझने का प्रयास किया गया है। वहीं विश्लेषणात्मक विधि के माध्यम से प्राप्त आँकड़ों एवं तथ्यों का आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए जातिगत मंदिरों की सामुदायिक एकता एवं सामाजिक विभाजन में भूमिका का विश्लेषण किया गया है। अतः यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों के आधार पर एक समेकित एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो जातिगत मंदिरों को सामाजिक संरचना, पहचान निर्माण एवं शक्ति-संबंधों के संदर्भ में समझने का प्रयास करता है।

जातिगत मंदिरों की उत्पत्ति एवं ऐतिहासिक विकास

भारतीय समाज में जातिगत मंदिरों की उत्पत्ति को समझने के लिए ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रक्रियाओं का समग्र विश्लेषण आवश्यक है। प्रारंभिक स्तर पर धार्मिक आस्था का स्वरूप मुख्यतः "कुलदेवता" एवं "ग्रामदेवता" की परंपराओं पर आधारित था। विभिन्न जातियों एवं वंशों के अपने-अपने देवता होते थे, जिनकी पूजा समुदाय-विशेष तक सीमित रहती थी। समय के साथ यह परंपरा सामूहिक रूप धारण करने लगी, जहाँ एक ही जाति या समूह के लोग अपने साझा धार्मिक प्रतीकों के आधार पर स्थायी पूजा स्थलों अर्थात मंदिरों का निर्माण करने लगे। इस प्रकार, कुलदेवता परंपरा जातिगत मंदिरों की उत्पत्ति का एक महत्वपूर्ण आधार बनी।

हिन्दू मंदिर की अवधारणा को यदि व्यापक दृष्टि से देखा जाए, तो इसे "देवताओं का घर" माना जाता है, जहाँ मानव और दैवीय जगत का मिलन होता है। मंदिर केवल पूजा का स्थल नहीं, बल्कि वह एक पवित्र स्थान है, जो सामान्य सामाजिक जीवन से अलग होता है और समुदाय की सामूहिक चेतना को अभिव्यक्त करता है। ऐतिहासिक रूप से मंदिर निर्माण का विकास मुख्यतः 5वीं–6वीं शताब्दी CE के आसपास हुआ, जब वैदिक यज्ञ परंपरा से हटकर भक्ति की ओर संक्रमण हुआ। इस परिवर्तन ने स्थायी पूजा स्थलों के निर्माण को प्रोत्साहित किया, जिससे विभिन्न सामाजिक समूहों और जातियों ने अपने-अपने धार्मिक केंद्र विकसित किए।

मध्यकालीन एवं औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज में जातिगत संरचना अधिक कठोर हो गई और मंदिरों पर उच्च जातियों का नियंत्रण स्थापित हो गया। इसके परिणामस्वरूप निम्न एवं वंचित जातियों को मंदिरों में प्रवेश, पूजा-अर्चना एवं धार्मिक अनुष्ठानों में भागीदारी से वंचित किया जाने लगा। यहाँ "पवित्र" और "अपवित्र" के बीच का विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो मंदिर की सामाजिक सीमाओं में परिलक्षित होता है। यह सामाजिक बहिष्कार केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं था, बल्कि व्यापक सामाजिक असमानता और पदानुक्रम का द्योतक था।

इसी संदर्भ में, निम्न जातियों द्वारा वैकल्पिक मंदिरों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। ये मंदिर केवल धार्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, सामाजिक पहचान और सामुदायिक एकता को सुदृढ़ करने के साधन के रूप में उभरे। इस प्रकार, जातिगत मंदिरों को सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है। आधुनिक काल में शिक्षा, सामाजिक जागरूकता और दलित आंदोलनों के प्रभाव से इन मंदिरों का स्वरूप और अधिक संगठित हुआ है। कई समुदायों ने अपने मंदिरों को सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र के रूप में विकसित किया है। हालांकि, यह प्रक्रिया जहाँ एक ओर समुदाय के भीतर एकता को सुदृढ़ करती है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न जातियों के बीच पृथक्करण और विभाजन को भी बनाए रखती है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जातिगत मंदिरों की उत्पत्ति एक बहुआयामी प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें कुलदेवता परंपरा, भक्ति आंदोलन के प्रभाव से मंदिर निर्माण, पवित्र-अपवित्र का विभाजन, सामाजिक बहिष्कार तथा सामाजिक परिवर्तन सभी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ये मंदिर न केवल धार्मिक आस्था के केंद्र हैं, बल्कि वे सामाजिक संरचना, पहचान निर्माण और शक्ति-संबंधों के भी सशक्त प्रतीक हैं।

जातिगत मंदिरों का वर्गीकरण, संरचना एवं समाजशास्त्रीय विश्लेषण

भारतीय समाज में जातिगत मंदिरों की सटीक संख्या निर्धारित करना कठिन है, क्योंकि ये मुख्यतः स्थानीय, अनौपचारिक एवं सामुदायिक स्तर पर विकसित धार्मिक संस्थाएँ हैं। तथापि, इनके स्वरूप, कार्य एवं सामाजिक प्रभाव के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जा सकता है। यह वर्गीकरण न केवल धार्मिक विविधता को स्पष्ट करता है, बल्कि सामाजिक संरचना, पहचान निर्माण एवं शक्ति-संबंधों को भी समझने में सहायक होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से, ये मंदिर "सामूहिक प्रतिनिधित्व", "पदानुक्रम" तथा "सामाजिक गतिशीलता" की अवधारणाओं को मूर्त रूप देते हैं।

सारणी 1: उच्च जाति मंदिर

क्रम संख्या	आयाम	विवरण
1	प्रमुख समुदाय	ब्राह्मण, क्षत्रिय
2	धार्मिक स्वरूप	वैदिक परंपरा, कुलदेवता पूजा
3	विशेषताएँ	शुद्धता-अशुद्धता, अनुष्ठानिक कठोरता
4	सामाजिक कार्य	सामाजिक नियंत्रण, परंपरा संरक्षण
5	उदाहरण	राजपूत कुलदेवी मंदिर, अग्रहारा मंदिर

इन मंदिरों में "शुद्धता-अशुद्धता" का सिद्धांत प्रमुख होता है, जो लुई ड्यूमों की पुस्तक Homo Hierarchicus में प्रतिपादित पदानुक्रम को दर्शाता है। यहाँ धार्मिक अधिकार और सामाजिक प्रतिष्ठा परस्पर जुड़े होते हैं, जिससे सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया सुदृढ़ होती है।

सारणी 2: पिछड़ी जाति (OBC) मंदिर

क्रम संख्या	आयाम	विवरण
1	प्रमुख समुदाय	यादव, कुर्मी, जाट, मराठा
2	धार्मिक स्वरूप	लोकदेवता, कृष्ण भक्ति
3	विशेषताएँ	सामुदायिक संगठन, गतिशीलता
4	सामाजिक कार्य	सामाजिक उन्नयन, सामूहिक पहचान
5	उदाहरण	ग्राम देवता मंदिर, यादव कृष्ण मंदिर

यहाँ The Remembered Village के "संस्कृतिकरण" सिद्धांत की भूमिका स्पष्ट होती है, जहाँ जातियाँ उच्च जातियों की धार्मिक प्रथाओं को अपनाकर अपनी सामाजिक स्थिति को उन्नत करने का प्रयास करती हैं।

सारणी 3: अनुसूचित जाति (SC) धार्मिक स्थल

क्रम संख्या	आयाम	विवरण
1	प्रमुख समुदाय	जाटव, वाल्मीकि, रविदास समुदाय
2	धार्मिक स्वरूप	संत परंपरा, बौद्ध प्रभाव
3	विशेषताएँ	बहिष्कार के प्रत्युत्तर में निर्माण
4	सामाजिक कार्य	पहचान निर्माण, समानता का दावा

5	उदाहरण	रविदास मंदिर, वाल्मीकि मंदिर

ये स्थल सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध प्रतिरोध के रूप में उभरते हैं। यहाँ धर्म एक "समानता आधारित पहचान" का माध्यम बनता है, जो सामाजिक न्याय और आत्मसम्मान को सुदृढ़ करता है।

सारणी 4: जनजातीय (ST) पवित्र स्थल

क्रम संख्या	आयाम	विवरण
1	प्रमुख समुदाय	गोंड, भील, संथाल
2	धार्मिक स्वरूप	प्रकृति पूजा
3	विशेषताएँ	सामूहिक अनुष्ठान, लोक परंपरा
4	सामाजिक कार्य	सांस्कृतिक संरक्षण, सामुदायिक एकता
5	उदाहरण	सरना स्थल, वन देवस्थल

ये स्थल Indian Village में वर्णित "लोक संस्कृति" और सामुदायिक जीवन के घनिष्ठ संबंध को दर्शाते हैं, जहाँ धर्म और प्रकृति एकीकृत होते हैं।

संकल्पनात्मक प्रारूप

चित्र संख्या 1: जातिगत मंदिर और सामाजिक प्रभाव

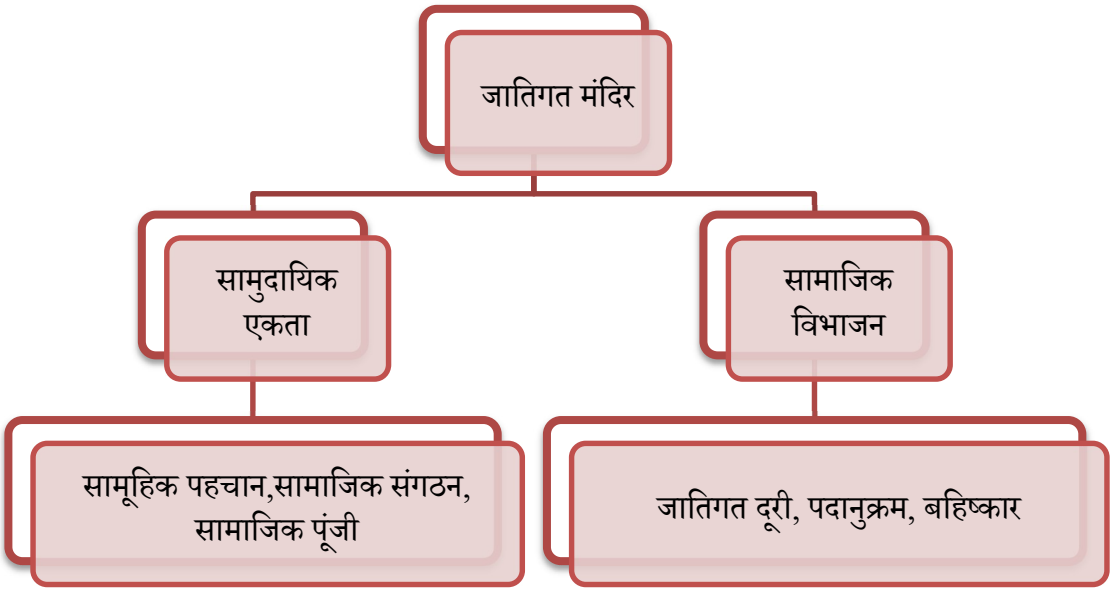

चित्र संख्या 2: संरचनात्मक प्रवाह मॉडल

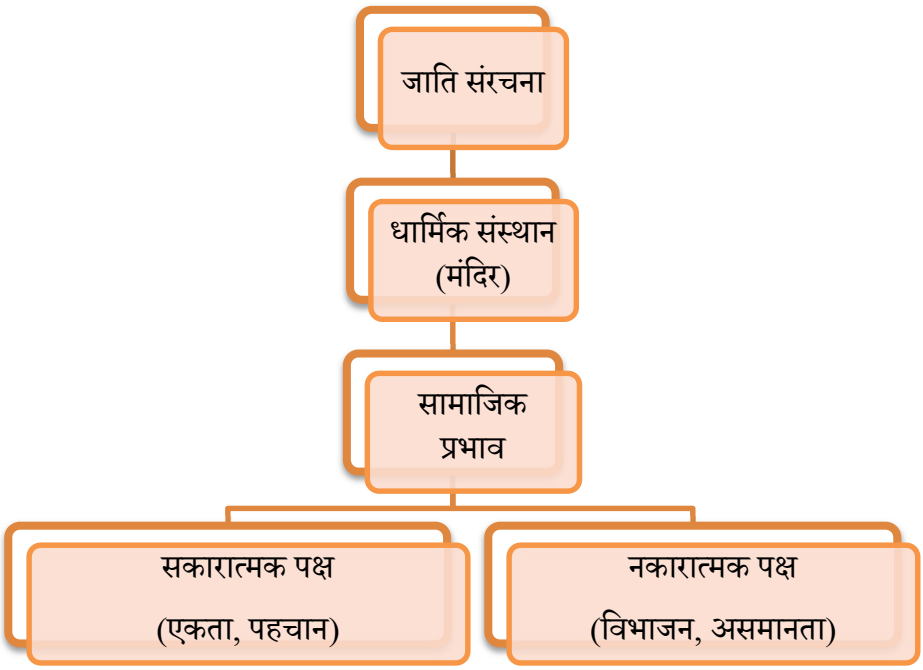

उपरोक्त वर्गीकरण एवं संकल्पनात्मक मॉडलों के आधार पर स्पष्ट होता है कि जातिगत मंदिर भारतीय समाज में द्वंद्वात्मक भूमिका निभाते हैं। एक ओर वे सामुदायिक एकता, सामाजिक संगठन, पहचान निर्माण एवं सांस्कृतिक निरंतरता को सुदृढ़ करते हैं, जबकि दूसरी ओर वे सामाजिक विभाजन, जातिगत पदानुक्रम एवं बहिष्कार की प्रक्रियाओं को भी बनाए रखते हैं। इस प्रकार, जातिगत मंदिर केवल धार्मिक आस्था के केंद्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक संरचना के पुनरुत्पादन तथा शक्ति-संबंधों के सशक्त माध्यम हैं। यह विश्लेषण दर्शाता है कि धर्म और जाति का अंतर्संबंध भारतीय समाज की जटिलता को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जातिगत मंदिर और सामुदायिक एकता

भारतीय समाज में जातिगत मंदिर केवल धार्मिक आस्था के केंद्र नहीं होते, बल्कि वे सामुदायिक एकता को सुदृढ़ करने वाले महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थान के रूप में कार्य करते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से, ये मंदिर उस "सामूहिक चेतना" को अभिव्यक्त करते हैं, जिसके माध्यम से एक जाति या समुदाय अपने साझा मूल्यों, परंपराओं और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखता है। जातिगत मंदिरों में आयोजित सामूहिक पूजा, उत्सव और धार्मिक अनुष्ठान समुदाय के सदस्यों को एक मंच पर एकत्रित करते हैं। ये अनुष्ठान केवल धार्मिक क्रियाएँ नहीं होते, बल्कि वे सामूहिक सहभागिता और भावनात्मक एकता को भी प्रोत्साहित करते हैं। एमिल दुर्खीम ने अपनी कृति The Elementary Forms of Religious Life (1912) में यह स्पष्ट किया है कि धार्मिक अनुष्ठान "सामूहिक ऊर्जा" उत्पन्न करते हैं, जो व्यक्तियों को एक साझा समूह चेतना से जोड़ते हैं। इस दृष्टि से, जातिगत मंदिरों में होने वाली पूजा और अनुष्ठान समुदाय के भीतर सामाजिक एकजुटता को सुदृढ़ करते हैं।

जातिगत मंदिर समुदाय के संगठनात्मक केंद्र के रूप में भी कार्य करते हैं। यहाँ न केवल धार्मिक गतिविधियाँ संचालित होती हैं, बल्कि सामाजिक बैठकों, निर्णय प्रक्रियाओं और सामुदायिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता है। विवाह, त्यौहार और अन्य सामाजिक अवसरों में मंदिर की केंद्रीय भूमिका होती है, जिसके माध्यम से समुदाय के सदस्य एक-दूसरे के साथ संवाद स्थापित करते हैं और सामूहिक निर्णय लेते हैं। इस प्रकार, मंदिर एक "सामाजिक संस्था" के रूप में कार्य करते हुए समुदाय के भीतर संगठन, अनुशासन और समन्वय को बनाए रखते हैं।

इसके साथ ही, जातिगत मंदिर किसी विशेष समुदाय की पहचान को निर्मित और सुदृढ़ करने का प्रमुख माध्यम होते हैं। एक ही जाति के लोग जब अपने विशेष देवता, अनुष्ठानों और सांस्कृतिक परंपराओं के माध्यम से जुड़ते हैं, तो उनमें "हम-भावना" विकसित होती है। एम. एन. श्रीनिवास के अध्ययन The Remembered Village (1976) से यह स्पष्ट होता है कि धार्मिक प्रथाएँ और सांस्कृतिक व्यवहार सामाजिक पहचान को परिभाषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार, मंदिर केवल आस्था का केंद्र नहीं, बल्कि जातिगत पहचान और सामाजिक स्थिति का प्रतीक भी बन जाते हैं।

पियरे बौर्डियू (1986) के सामाजिक पूंजी (social capital) सिद्धांत के अनुसार, सामाजिक नेटवर्क, आपसी विश्वास और संसाधनों का आदान-प्रदान सामुदायिक शक्ति और सहयोग का आधार बनता है। जातिगत मंदिरों में यह सामाजिक पूंजी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मंदिरों के माध्यम से समुदाय के सदस्य आपसी विश्वास, सहयोग और नेटवर्क का विकास करते हैं। सामूहिक गतिविधियाँ जैसे दान, सेवा और धार्मिक आयोजन समुदाय के भीतर पारस्परिक संबंधों को मजबूत बनाती हैं। यह सामाजिक पूंजी संकट के समय सहयोग, आर्थिक सहायता और सामाजिक समर्थन के रूप में प्रकट होती है, जिससे समुदाय की स्थिरता और एकता बनी रहती है।

अतः स्पष्ट है कि जातिगत मंदिर भारतीय समाज में सामुदायिक एकता के सशक्त माध्यम हैं। वे सामूहिक पूजा के द्वारा भावनात्मक जुड़ाव, सामाजिक संगठन के माध्यम से संरचनात्मक एकता, पहचान निर्माण के माध्यम से सांस्कृतिक निरंतरता तथा सामाजिक पूंजी के माध्यम से सहयोग और विश्वास को सुदृढ़ करते हैं। यद्यपि ये मंदिर व्यापक सामाजिक विभाजन की पृष्ठभूमि में विकसित हुए हैं, फिर भी समुदाय-विशेष के भीतर एकता और संगठन को मजबूत करने में उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जातिगत मंदिर और सामाजिक विभाजन

जातिगत मंदिर भारतीय समाज में केवल धार्मिक क्रियाकलाप का केंद्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक विभाजन और जातिगत पदानुक्रम को स्पष्ट और संरक्षित करने वाले प्रमुख संस्थान भी हैं। सामाजिक संरचना के भीतर मंदिर अक्सर उच्च और निम्न जातियों के बीच स्पष्ट सीमाएँ स्थापित करते हैं। उच्च जातियाँ जैसे ब्राह्मण और क्षत्रिय मंदिर प्रबंधन, पूजा-अर्चना और अनुष्ठानों में विशेषाधिकार रखती हैं, जबकि निम्न और वंचित जातियों के लिए प्रवेश और सहभागिता में कई बार प्रतिबंध लगाए जाते हैं। इस प्रकार, मंदिर न केवल धार्मिक, बल्कि सामाजिक नियंत्रण और प्रभुत्व का केंद्र भी बन जाते हैं।

धार्मिक अनुष्ठानों और पूजा के माध्यम से जातिगत दूरी को निरंतर बनाए रखना भारतीय समाज की परंपरागत संरचना का हिस्सा रहा है। लुई ड्यूमों के अनुसार,भारतीय समाज का पदानुक्रम "शुद्धता-अशुद्धता" के सिद्धांत पर आधारित है। उच्च

जातियों के मंदिरों में प्रवेश, गर्भगृह में पूजा-अर्चना और धार्मिक अनुष्ठानों का संचालन केवल उनके नियंत्रण में रहता है। इस धार्मिक असमानता का प्रभाव व्यापक सामाजिक स्तर पर भी दिखाई देता है, जिससे उच्च जातियों का प्रभुत्व और सामाजिक शक्ति पुन:स्थापित होती है।

जातिगत मंदिर सामाजिक विभाजन को केवल धार्मिक गतिविधियों तक सीमित नहीं रखते। ये सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संसाधनों के वितरण में भी भूमिका निभाते हैं। उदाहरण स्वरूप, उच्च जातियाँ मंदिर के माध्यम से समुदाय में नेतृत्व और निर्णय प्रक्रियाओं में प्रभुत्व बनाए रखती हैं, जबकि निम्न जातियों को अक्सर बाहरी या गौण भूमिका में रखा जाता है। एम. एन. श्रीनिवास ने अपने अध्ययन The Remembered Village में यह दर्शाया कि मंदिर समाज में प्रभुत्वशाली जातियों के नियंत्रण और सामुदायिक संसाधनों के वितरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

जातिगत मंदिर केवल प्रवेश और पूजा तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि ये सामाजिक पहचान और विभाजन की प्रक्रियाओं को स्थायित्व प्रदान करते हैं। दलित अध्ययन और मंदिर प्रवेश आंदोलनों ने यह स्पष्ट किया है कि सामाजिक बहिष्कार के खिलाफ संघर्ष के बावजूद, कई स्थानों पर उच्च जातियाँ धार्मिक और सामाजिक शक्ति बनाए रखने के लिए मंदिर नियंत्रण का प्रयोग करती रही हैं। इस तरह, मंदिर जातिगत दूरी, बहिष्कार और असमानता को नियमित और वैध ठहराने का कार्य करते हैं।

सामाजिक दृष्टि से, जातिगत मंदिर एक द्वंद्वात्मक संरचना प्रस्तुत करते हैं। एक ओर वे समुदाय विशेष के भीतर संगठन और पहचान को सुदृढ़ करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे व्यापक समाज में असमानता और जातिगत पदानुक्रम को पुनरुत्पादित करते हैं। पियरे बौर्डियू के सामाजिक पूंजी सिद्धांत के अनुसार, उच्च जातियों के पास धार्मिक और सामाजिक नेटवर्क के माध्यम से अधिक सामाजिक पूंजी होती है, जिससे उनका प्रभुत्व और संसाधनों पर नियंत्रण मजबूत होता है। निम्न जातियाँ इस संरचना के भीतर सीमित संसाधनों और सामाजिक अवसरों तक ही सीमित रह जाती हैं।

अतः यह स्पष्ट होता है कि जातिगत मंदिर न केवल धार्मिक स्थल हैं, बल्कि भारतीय समाज में सामाजिक विभाजन और जातिगत पदानुक्रम को बनाए रखने वाले संस्थान हैं। ये मंदिर धर्म और समाज के बीच गहरे अंतर्संबंध को दर्शाते हैं, जहाँ धार्मिक आस्था और सामाजिक असमानता दोनों एक-दूसरे के साथ सहजीवन में मौजूद हैं।

जाति और धर्म का अंतर्संबंध

भारतीय समाज में जाति और धर्म का संबंध अत्यंत गहन और जटिल है। जाति केवल सामाजिक वर्गीकरण का माध्यम नहीं है, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से निरंतर संरक्षित और पुनरुत्पादित होती रही है। धार्मिक संस्थान, विशेषकर मंदिर, इस प्रक्रिया में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। ये न केवल पूजा-अर्चना और अनुष्ठानों के केंद्र होते हैं, बल्कि सामाजिक पदानुक्रम, अधिकार और पहचान के स्थायी प्रतीक भी हैं। लुई ड्यूमों इसे "शुद्धता और अशुद्धता" की अवधारणा पर आधारित मानते हैं, और मंदिर उच्च जातियों के सामाजिक प्रभुत्व और धार्मिक वैधता को स्थापित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

मंदिरों के धार्मिक अनुष्ठान और प्रवेश नियम जातियों के बीच सामाजिक दूरी को बनाए रखते हैं। उच्च जातियाँ पूजा, गर्भगृह में प्रवेश और अनुष्ठानों का संचालन अपने नियंत्रण में रखती हैं, जबकि निम्न जातियाँ इन गतिविधियों में अक्सर बहिष्कृत रहती हैं। इस प्रकार, धार्मिक आस्था और परंपराएँ केवल आध्यात्मिक गतिविधियाँ नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना के संरक्षण का माध्यम भी बन जाती हैं। एम. एन. श्रीनिवास ने स्पष्ट किया है कि धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाएँ किसी समुदाय की सामाजिक संरचना को स्थायित्व प्रदान करती हैं और उच्च जातियों के प्रभुत्व को वैधता देती हैं।

जातिगत मंदिर इस अंतर्संबंध का स्पष्ट उदाहरण हैं। प्रत्येक जाति के पास अपने विशेष देवता, अनुष्ठान और पूजा स्थल होते हैं। ये मंदिर केवल धार्मिक केंद्र नहीं, बल्कि सामाजिक पहचान और सामूहिक चेतना के प्रतीक भी हैं। कुलदेवता परंपरा, सांस्कृतिक उत्सव और अनुष्ठान जातियों के भीतर संगठन, सामूहिक पहचान और परस्पर सहयोग को मजबूत करते हैं। पियरे बौर्डियू के अनुसार, धार्मिक संस्थानों के माध्यम से सामाजिक पूंजी का निर्माण होता है, जो समुदाय के भीतर विश्वास, सहयोग और नेटवर्क को विकसित करता है। उच्च जातियों के पास इस सामाजिक पूंजी का नियंत्रण होता है, जिससे उनका प्रभुत्व और सामाजिक शक्ति सुनिश्चित होती है।

इसके अतिरिक्त, धर्म जातिगत असमानता को धार्मिक वैधता प्रदान करता है। धार्मिक ग्रंथ, परंपराएँ और अनुष्ठान जातियों के सामाजिक अधिकार और कर्तव्यों को संस्थागत रूप देते हैं। दलित और पिछड़ी जातियों के मंदिर प्रवेश आंदोलनों से यह स्पष्ट होता है कि उच्च जातियों ने धार्मिक अधिकार का प्रयोग सामाजिक प्रभुत्व बनाए रखने के लिए किया। इस प्रकार, धर्म न केवल आध्यात्मिक आस्था का प्रतीक है, बल्कि सामाजिक नियंत्रण और संरचना के वैधकरण का उपकरण भी है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में जाति और धर्म का अंतर्संबंध गहन और द्वंद्वात्मक है। धर्म जाति के पदानुक्रम, सामाजिक पहचान और सत्ता संबंधों को संरक्षित करता है, जबकि जातिगत मंदिर और धार्मिक अनुष्ठान सामुदायिक एकता और सांस्कृतिक पहचान को भी सुदृढ़ करते हैं। यह अंतर्संबंध यह दर्शाता है कि धार्मिक आस्था और सामाजिक संरचना एक-दूसरे के साथ सहजीवन में मौजूद हैं और भारतीय समाज की जटिलताओं को समझने के लिए उनका अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जातिगत मंदिर भारतीय समाज की संरचना में एक महत्वपूर्ण, किन्तु द्वंद्वात्मक सामाजिक संस्था के रूप में कार्य करते हैं। ये मंदिर केवल धार्मिक आस्था के केंद्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक संबंधों, पहचान निर्माण एवं शक्ति-संतुलन के भी प्रमुख माध्यम हैं। एक ओर, जातिगत मंदिर समुदाय-विशेष के भीतर सामूहिक चेतना, सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक निरंतरता को सुदृढ़ करते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों, उत्सवों एवं सामुदायिक गतिविधियों के माध्यम से वे सामाजिक पूंजी का निर्माण करते हैं, जिससे समुदाय के भीतर सहयोग, विश्वास और एकजुटता को बढ़ावा मिलता है। वहीं दूसरी ओर, ये मंदिर सामाजिक विभाजन, जातिगत पदानुक्रम एवं बहिष्कार की प्रक्रियाओं को भी बनाए रखते हैं। "शुद्धता-अशुद्धता" की अवधारणा तथा धार्मिक अधिकारों के असमान वितरण के कारण निम्न एवं वंचित जातियों को सीमित सहभागिता का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार, मंदिर सामाजिक असमानताओं को वैधता प्रदान करते हुए प्रभुत्वशाली वर्गों

की स्थिति को सुदृढ़ करते हैं। दुर्खीम, ड्यूमों और श्रीनिवास के सैद्धांतिक दृष्टिकोणों के आलोक में यह निष्कर्ष निकलता है कि जातिगत मंदिर एक ओर सामाजिक एकता के वाहक हैं, तो दूसरी ओर वे संरचनात्मक असमानताओं के पुनरुत्पादन का माध्यम भी हैं। यह द्वैत दर्शाता है कि धार्मिक संस्थाएँ केवल आध्यात्मिक संरचनाएँ नहीं, बल्कि सामाजिक शक्ति-संबंधों की सक्रिय अभिव्यक्तियाँ भी हैं। अतः समकालीन संदर्भ में आवश्यकता इस बात की है कि धार्मिक संस्थानों को अधिक समावेशी, लोकतांत्रिक एवं समानतामूलक बनाया जाए, ताकि वे सामाजिक समरसता, न्याय एवं सहभागिता को सुदृढ़ कर सकें। इसके लिए नीतिगत हस्तक्षेप, सामाजिक जागरूकता एवं सामुदायिक पहलें अत्यंत आवश्यक हैं, जिससे धार्मिक स्थलों को विभाजन के बजाय एकीकरण के माध्यम के रूप में विकसित किया जा सके। इस प्रकार, जातिगत मंदिर भारतीय समाज की जटिलताओं को प्रतिबिंबित करते हैं, जहाँ एकता और विभाजन दोनों साथ-साथ विद्यमान रहते हुए सामाजिक यथार्थ को निरंतर आकार देते हैं।

संदर्भ सूची

Afsana, Alam, T., Maurya, V., Singh, A. K., & Kumar2023, R. (2023). Caste system in indian culture: A socio-religious analysis. Madhya Bharti -Humanities and Social Sciences, 84(12), 136–146. Dr. Harisingh Gour University.

Barney, K. (2016). The history and symbolism of temples. By Common Consent, a Mormon Blog. https://bycommonconsent.com/2016/07/19/the-history-and-symbolism-of-temples/

Bayly, S. (1999). Caste, society and politics in India from the eighteenth century to the modern age. Cambridge University Press. (Online version published 2008).

Beteille, A. (2020). Society and politics in india: Essays in a comparative perspective. Routledge. (Original work published 1991)

Bourdieu, P. (1986). The forms of capital. In J. G. Richardson (Ed.), Handbook of Theory and Research for the Sociology of Education (pp. 241–258). Greenwood Press.

Dirks, N. B. (2001). Castes of Mind Colonialism and the Making of Modern India. Princeton University Press.

Dumont, L. (1972). Homo hierarchicus: The caste system and its implications. (M. Sainsbury, Trans.). London, Paladin. (Original work published 1966)

Durkheim, É. (1995). The elementary forms of religious life (K. E. Fields, Trans.). The Free Press. (Original work published 1912)

Ghurye, G. S. (1969). Caste and race in India. (Fifth edition.). Bombay: Popular Prakashan.

Government of India. (2011). Socio-Economic and Caste Census (SECC). Ministry of Rural Development. https://secc.dord.gov.in/

Jodhka, S. S. (2012). Caste. Oxford University Press.

Krishnan, S., & Jamvhulkar, R. (2015). Caste, religious institutions and domination. Economic and Political Weekly, 50(37), 15–18. JSTOR. https://doi.org/10.2307/24482364

Malik, S. K. (2022). Dalit and the historiography of temple entry movements in india: Mapping social exclusion and cultural subjugation. Contemporary Voice of Dalit, 1–14. https://doi.org/10.1177/2455328x211063340

Preston, C. (2026). Hindu temple. Encyclopedia Britannica. https://www.britannica.com/topic/Hindu-temple

Robinson, R. (2003). Christians of india. SAGE Publications.

Srinivas, M. N. (1962). Caste in modern india: And other essays. Bombay : Asia Publishing House.

Srinivas, M. N. (1980). The remembered village. University of California Press.